Multidisciplinary Journal of Shri Trilochan Upreti Smriti Shodh Sansthan DOI :
Vol.1 (2026)

भारतीय संस्कृति : विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ. भारती चौहान
विभागाध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग
आर.एस.एम. पी.जी. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर, (उ.प्र.)
मुरादाबाद मंडल -संयोजक, प्रज्ञा प्रवाह, भारतीय प्रज्ञान परिषद, मेरठ प्रांत, उ.प्र.
डॉ. अदिति सिन्धू
असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग
एस.बी.डी. पी.जी. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर (उ.प्र.)
सदस्य- प्रज्ञा प्रवाह, भारतीय प्रज्ञान परिषद, मेरठ प्रांत, उ.प्र.

शोध सार

भारतीय संस्कृति एक ऐसी जीवंत और गहन परंपरा है जो हजारों वर्षों से जीवन के विविध पहलुओं को समाहित करती आई है। इसमें धर्म, अध्यात्म, और प्रकृति के साथ समरस जीवन की एक अद्वितीय धारणा विकसित हुई है। भारतीय दर्शन यह मानता है कि मनुष्य केवल एक सामाजिक प्राणी नहीं, बल्कि आध्यात्मिक चेतना से युक्त एक आत्मिक अस्तित्व भी है। इस संस्कृति में धर्म और अध्यात्म केवल पूजा-पाठ की सीमाओं में बंधे नहीं, बल्कि जीवन को दिशा देने वाले नैतिक मूल्यों के स्तंभ हैं। इसी के साथ-साथ प्रकृति और उसमें समाहित पौराणिक वनस्पतियों को भी दिव्यता का प्रतीक मानते हुए उन्हें नैतिकता, शुद्धता और जीवन संतुलन का आधार माना गया है। इस लेख में हम धर्म, अध्यात्म और पौराणिक वनस्पतियों के माध्यम से भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्यों की भूमिका का विश्लेषण करेंगे।

मुख्य शब्दः भारतीय संस्कृति, अध्यात्म, संस्कार, पर्यावरण, वनस्पति, संस्कृति के स्वरूप, विशेषताएं

संस्कृति का अर्थ

संस्कृति का अर्थ अत्यंत व्यापक, गूढ़ और बहुआयामी है, जिसे किसी एक परिभाषा में सीमित करना कठिन है, क्योंकि यह मानव समाज के समग्र जीवन-व्यवहार, सोच, मूल्यों, विश्वासों, परंपराओं और जीवनशैली का दर्पण होती है। संस्कृति शब्द संस्कृत की "संस्कृ" धातु से निकला है, जिसका अर्थ होता है- शुद्ध करना, सजाना, परिष्कृत करना या विकास करना, अतः संस्कृति वह प्रक्रिया है जो मानव को पशुता से मानवता की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर और असंयम से अनुशासन की ओर प्रेरित करती है। यह केवल कला, संगीत, नृत्य, वास्तुकला या साहित्य तक सीमित नहीं होती, बल्कि यह एक समाज की विचारधारा, नैतिकता, आचार-विचार, खान-पान, पहनावा, भाषा, धार्मिक विश्वास और सामाजिक व्यवहार में परिलक्षित होती है।

संस्कृति किसी समाज की आत्मा होती है, जो पीढ़ियों के अनुभवों, ज्ञान, संघर्षों और संवेदनाओं का संचित रूप होती है। यह एक समाज को उसकी पहचान, दिशा और उद्देश्य प्रदान करती है और व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारतीय संस्कृति विशेष रूप से सहिष्णुता, विविधता में एकता, आध्यात्मिक चेतना, प्रकृति के साथ सामंजस्य, परिवार व्यवस्था, अतिथि-सत्कार, कर्म और धर्म के सिद्धांतों पर आधारित रही है।

यह संस्कृति न केवल स्थूल जीवन को, बल्कि सूक्ष्म आत्मिक जीवन को भी उन्नत करने की ओर उन्मुख करती है। संस्कृति में निहित मूल्य और आस्थाएँ व्यक्ति को जीवन के हर क्षेत्र में मर्यादा, अनुशासन और करुणा के साथ आगे बढ़ने की प्रेरणा देती हैं। जब कोई समाज अपनी संस्कृति से जुड़ा होता है, तब वह केवल भौतिक समृद्धि नहीं, बल्कि आत्मिक और सामाजिक संतुलन की ओर भी अग्रसर होता है। इस प्रकार संस्कृति का अर्थ केवल परंपराओं और रीति-रिवाजों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत और गतिशील प्रक्रिया है जो समाज और व्यक्ति को निरंतर संस्कारित करती है और उन्हें उच्चतर आदर्शों की ओर प्रेरित करती है।

संस्कृति की परिभाषाएँ

मनुष्य को अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिए अनेक प्रकार के संस्कारों का सामना करना पड़ता है और उसके बाद वह कहीं 'संस्कृत' (परिमार्जित) कहा जाता है। इस प्रकार संस्कृति की परिभाषा अलग-अलग विद्वानों ने अलग-अलग प्रकार से की है-

डॉ. सम्पूर्णानन्द– मानव का प्रत्येक विचार प्रत्येक कर्म संस्कृति नहीं है पर जिन कामों से किसी देश विदेश के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े, वहीं स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधाारशिला है, जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रसाद निर्मित होता है।

डॉ. व्हाइटहेड–संस्कृति मानसिक प्रयास, सौन्दर्य और मानवता की अनुभूति है।

गिलिन– प्रत्येक समूह तथा समाज में व्यवहार के ऐसे प्रतिमान होते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते हैं तथा बच्चों को सिखलाये जाते हैं, जिनमें निरन्तर परिवर्तन की संभावना रहती है।

रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया है। एक आत्मिक गुण है जो मनुष्य स्वभाव में उसी तरह व्याप्त हुआ है, जिस प्रकार फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक या दो दिन में नहीं होता, युग-युगान्तर में होता है।

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों ने किसी विशेष समूह, देश, जाति या कलात्मक एवं बौद्धिक विकास के रूप को देखते हुए संस्कृति की अलग-अलग परिभाषा दी हैं। हम कह सकते हैं कि सभ्यता के सूक्ष्म, शुद्ध और उदात्त तत्त्वों के रचनात्मक विकास और पल्लवन का नाम संस्कृति है। इस प्रकार व्यापक अर्थ में संस्कृति की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है-"संस्कृति वह जीवन पद्धति है जिसकी स्थापना मानव व्यक्ति तथा समूह के रूप में करता है, वह उन आविष्कारों का संग्रह है जिनकी खोज मानव ने अपने जीवन को सफल बनाने के लिये की है। अपनी आत्मा और प्रकृति पर विजय प्राप्त करके ही व्यक्ति उन्नत हो सकता है।"

भारतीय संस्कृति में पौराणिक वनस्पतियों की भूमिका

भारतीय संस्कृति में पौराणिक वनस्पतियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण, गूढ़ और बहुआयामी रही है, जो केवल प्रकृति के संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि धार्मिक, आध्यात्मिक, औषधीय और नैतिक मूल्यों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। भारत की प्राचीन परंपराओं में वनस्पतियों को देवतुल्य मानकर पूजा गया है और उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आदर और

श्रद्धा के साथ स्थान दिया गया है। तुलसी, पीपल, वटवृक्ष, बेलपत्र, दूर्वा, आंवला, अशोक, कदंब और धतूरा जैसी अनेक पौराणिक वनस्पतियाँ केवल औषधीय गुणों के कारण ही नहीं, बल्कि अपनी धार्मिक महत्ता के कारण भी संस्कृति में रची-बसी हैं।



तुलसी को विष्णु और लक्ष्मी की प्रिय मानी जाती है और इसकी पूजा से घर में शुद्धता, स्वास्थ्य और समृद्धि मानी जाती है। पीपल को ब्रह्मा, विष्णु और शिव का प्रतीक मानकर इसकी पूजा की जाती है और इसके नीचे बैठकर ध्यान करने से आध्यात्मिक शांति प्राप्त होती है। वटवृक्ष, विशेषकर वट सावित्री व्रत के समय, स्त्रियों द्वारा अपने पतियों की दीर्घायु हेतु पूजित होता है। बेलपत्र को शिव को अर्पित करने से विशेष पुण्य मिलता है, और यह त्रिदेवों के त्रिगुणों का प्रतीक माना जाता है। इन पवित्र वृक्षों की पूजा और संरक्षण केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं है, बल्कि यह प्रकृति के प्रति भारतीयों की संवेदनशीलता और पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने की परंपरा का हिस्सा भी है। पौराणिक ग्रंथों और पुराणों में इन वनस्पतियों का उल्लेख न केवल धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में मिलता है, बल्कि इनकी औषधीय विशेषताओं और आध्यात्मिक ऊर्जा के स्रोत के रूप में भी किया गया है।

आयुर्वेद और योग साधना में भी इन वनस्पतियों की भूमिका अमूल्य मानी गई है। इन पौधों के माध्यम से भारतीय संस्कृति यह संदेश देती है कि मानव जीवन प्रकृति से जुड़कर ही पूर्णता प्राप्त कर सकता है। इन पौराणिक वनस्पतियों का स्मरण और सम्मान भारतीयों की उस जीवन दृष्टि का प्रतीक है जिसमें मनुष्य, प्रकृति और ईश्वर के बीच गहरा, पवित्र और संतुलित संबंध होता है। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति में पौराणिक वनस्पतियाँ न केवल आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करती हैं, बल्कि समाज को नैतिक मूल्यों, संयम और पर्यावरण प्रेम की ओर भी प्रेरित करती हैं।

भारतीय संस्कृति में धर्म, अध्यात्म और वानस्पतिक औषधियों का मूल्यांकन

भारतीय संस्कृति में धर्म, अध्यात्म और वानस्पतिक औषधियों का आपसी संबंध गहराई और व्यापकता लिए हुए है, जिसमें मानव जीवन के शारीरिक, मानसिक और आत्मिक पक्षों की संतुलित देखभाल की परंपरा विद्यमान रही है। भारत की प्राचीन धार्मिक परंपराएँ न केवल ईश्वर भक्ति और कर्मकांडों पर आधारित थीं, बल्कि वे जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन, स्वास्थ्य और सद्गुणों की प्राप्ति की दिशा में भी प्रेरित करती थीं। वैदिक काल से ही ऋषि-मुनियों ने धर्म और अध्यात्म को जीवन का मूल आधार मानते हुए वनस्पतियों और औषधियों को ईश्वरीय वरदान माना, जो न केवल रोगों के उपचार में सहायक हैं, बल्कि योग, ध्यान और तपस्या में शरीर को शुद्ध और मन को स्थिर बनाए रखने में भी सहायक सिद्ध होती हैं।

आयुर्वेद, जिसे 'जीवन का विज्ञान' कहा गया है, भारतीय ज्ञान परंपरा का एक अमूल्य हिस्सा है, जिसमें सैकड़ों औषधीय पौधों जैसे अश्वगंधा, ब्राह्मी, गिलोय, हरितकी, शतावरी, तुलसी, नीम आदि का वर्णन मिलता है, जिन्हें धार्मिक और आध्यात्मिक विधियों के साथ भी जोड़ा गया है। उदाहरणस्वरूप, तुलसी का पौधा न केवल विष्णु भक्ति का प्रतीक है, बल्कि यह वातावरण को शुद्ध करता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में अत्यंत प्रभावी है। इसी प्रकार, नीम को स्वास्थ्य का रक्षक माना गया है, और इसे धार्मिक आयोजनों में पवित्रता के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। अध्यात्मिक साधना में शारीरिक तप और मन की एकाग्रता आवश्यक मानी गई है, जिसे प्राप्त करने हेतु आयुर्वेदिक औषधियाँ

अमूल्य सहायक बनती हैं। धर्मग्रंथों में भी यह उल्लेख मिलता है कि प्रकृति की उपासना और वनस्पतियों का सम्मान न केवल एक धार्मिक कर्तव्य है, बल्कि यह एक सामाजिक और चिकित्सकीय उत्तरदायित्व भी है। भारतीय संस्कृति में यह विश्वास गहराई से समाहित है कि जब शरीर, मन और आत्मा तीनों शुद्ध और संतुलित होते हैं, तभी मानव जीवन पूर्णता की ओर अग्रसर होता है, और इस संतुलन को प्राप्त करने में धर्म, अध्यात्म और वानस्पतिक औषधियाँ मिलकर मार्गदर्शक की भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार, भारतीय सांस्कृतिक दृष्टिकोण में इन तीनों तत्वों का मूल्यांकन केवल ऐतिहासिक या पौराणिक दृष्टि से नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन-दर्शन के रूप में किया जाता है जो आज के आधुनिक समय में भी उतना ही प्रासंगिक है।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति : गुरुकुल एवं आधुनिक शिक्षा से तुलना

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति, विशेषकर गुरुकुल प्रणाली, एक ऐसी अद्वितीय व्यवस्था थी जो केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं थी, बल्कि जीवन के समग्र विकास- शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक की दिशा में विद्यार्थी को प्रशिक्षित करती थी। इस प्रणाली में शिक्षा गुरुओं के आश्रमों में दी जाती थी, जहाँ विद्यार्थी गुरु के सान्निध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करता था और गुरु-शिष्य संबंध एक अत्यंत आत्मीय, अनुशासित और आदर्श व्यवस्था का रूप होता था।

गुरुकुलों में वेद, उपनिषद, धर्मशास्त्र, गणित, ज्योतिष, व्याकरण, संगीत, आयुर्वेद, युद्ध-कला और नीति जैसे विषय पढ़ाए जाते थे, साथ ही आचार-विचार, संयम, सेवा, विनय और प्रकृति से जुड़ाव को भी शिक्षा का अभिन्न अंग माना जाता था। शिक्षा नि:शुल्क होती थी और उसका उद्देश्य केवल जीविका अर्जन नहीं, बल्कि आत्मकल्याण, चरित्र निर्माण और राष्ट्र सेवा होता था। इसके विपरीत आधुनिक शिक्षा पद्धति, जो औपनिवेशिक प्रभावों के तहत विकसित हुई, अधिकतर भौतिकता, परीक्षा-प्रणाली, अंक-प्रतिस्पर्धा और रोजगारोन्मुखी सोच पर केंद्रित है। आधुनिक विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में आज ज्ञान तो दिया जाता है, परंतु मूल्य, संस्कार और आत्मिक चेतना जैसी पहलुओं की उपेक्षा होती जा रही है। जबकि प्राचीन शिक्षा में विद्यार्थी का जीवन एक तपस्या की तरह होता था, जिसमें अनुशासन, आत्मनियंत्रण और श्रम के माध्यम से ज्ञान प्राप्ति होती थी, वहीं आज की शिक्षा कहीं अधिक सुविधाभोगी, तकनीकी और तेज़ रफ्तार हो गई है, जिसमें विद्यार्थी और शिक्षक के बीच का व्यक्तिगत और भावनात्मक संबंध लगभग लुप्त होता जा रहा है।

फिर भी आधुनिक शिक्षा ने विज्ञान, तकनीक और वैश्विक सोच की दिशा में प्रगति की है, जो आज के युग की आवश्यकता है। अत: यह तुलना स्पष्ट करती है कि प्राचीन गुरुकुल पद्धति जहाँ व्यक्ति के समग्र विकास पर बल देती थी, वहीं आधुनिक शिक्षा प्रणाली विशेषकर करियर निर्माण और तकनीकी दक्षता को प्राथमिकता देती है। यदि हम दोनों प्रणालियों की श्रेष्ठताओं को समन्वित कर एक नई शिक्षा दृष्टि विकसित करें, तो न केवल व्यावसायिक योग्यता बल्कि नैतिक, मानसिक और आत्मिक परिपक्वता से युक्त सशक्त समाज का निर्माण संभव

हो सकेगा।

भारतीय कला एवं स्थापत्य : मंदिरों एवं स्मारकों की वैज्ञानिकता

भारतीय कला एवं स्थापत्य का इतिहास न केवल धार्मिक और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का प्रतीक है, बल्कि उसमें गहन वैज्ञानिक दृष्टिकोण, गणितीय सूक्ष्मता और प्रकृति के साथ सामंजस्य की गहरी समझ भी समाहित है। विशेषत: प्राचीन मंदिर निर्माण कला जैसे खजुराहो, कोणार्क, महाबलीपुरम और मणिपुर के मंदिर इस बात के साक्षी हैं कि भारत के स्थापत्यकारों और शिल्पियों ने ज्यामिति, खगोल विज्ञान और वास्तुशास्त्र का अत्यंत प्रभावशाली और संतुलित उपयोग किया था। उदाहरण के लिए, कोणार्क का सूर्य मंदिर एक विशाल रथ के रूप में निर्मित है जिसमें बारह कलात्मक पहिए और सात घोड़े हैं, जो सूर्य के रथ का प्रतीक हैं, और यह मंदिर इस प्रकार निर्मित है कि सूर्य की किरणें पूरे वर्ष विशिष्ट कोणों से गर्भगृह में प्रवेश करती हैं, जो खगोल शास्त्र के गहरे ज्ञान का परिचायक है।

इसी प्रकार खजुराहो के मंदिरों की योजना भी विशेष रूप से नक्षत्रों और दिशाओं के अनुसार तय की गई है, जिससे उनमें ऊर्जा का प्रवाह नियंत्रित रहता है। मूर्तिकला, चित्रकला एवं शिल्पकला में धार्मिक प्रतीकों जैसे कमल, नंदी, गरुड़, त्रिशूल, चक्र आदि के माध्यम से आध्यात्मिक भावनाओं और सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति की गई है, जो केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि गूढ़ दार्शनिक अर्थों को संप्रेषित करने के लिए बनाई गई थीं।

भारत की प्राचीन कला में प्रत्येक आकृति, मुद्रा और रंग का विशेष अर्थ होता था, जो धर्म, दर्शन और जीवन के सिद्धांतों से जुड़ा हुआ था। भारतीय स्थापत्य की एक अनूठी विशेषता यह भी रही है कि वह प्रकृति के संरक्षण, पर्यावरण के सम्मान और पंचतत्त्वों के संतुलन पर आधारित रही है। प्राचीन मंदिरों में जल संचयन की व्यवस्था, वनों से घिरी निर्माण स्थलों की योजना, और निर्माण में स्थानीय प्राकृतिक सामग्री का उपयोग यह सिद्ध करता है कि वास्तुकारों ने प्रकृति को उपभोग की वस्तु नहीं, बल्कि पूज्य और संरक्षण योग्य शक्ति माना।

इसीलिए प्राचीन भारतीय स्थापत्य, कला और मंदिर निर्माण प्रणाली एक ऐसी जीवनदृष्टि को प्रतिबिंबित करती है जो धर्म, विज्ञान, प्रकृति और मानव चेतना को एक सूत्र में पिरोती है और आज के युग में भी सतत विकास और सांस्कृतिक चेतना के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई है।

भारतीय पर्व एवं त्योहार : सामाजिक एकता एवं प्रकृति संरक्षण

भारतीय पर्व एवं त्योहार न केवल धार्मिक आस्था और सांस्कृतिक परंपराओं का प्रतीक हैं, बल्कि वे सामाजिक एकता, पारिवारिक सामंजस्य, सह-अस्तित्व और प्रकृति संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण मूल्यों को भी समाहित करते हैं, जो भारतीय समाज की आत्मा को परिभाषित करते हैं। भारत एक विविधतापूर्ण देश है जहाँ विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातियों और संस्कृतियों के लोग रहते हैं, और यही विविधता हमारे त्योहारों में एकता का रंग भरती है। चाहे होली का रंग हो, दिवाली की रौशनी हो, ईद की मिठास हो, क्रिसमस की सजावट हो या गुरुपर्व की श्रद्धा – हर त्योहार एक-दूसरे के साथ मिलकर

मनाने की परंपरा को आगे बढ़ाता है और सामाजिक समरसता को प्रोत्साहन देता है।

भारतीय त्योहारों में सामूहिकता और मेल-जोल की भावना स्पष्ट दिखाई देती है, जहाँ लोग वर्ग, जाति या धर्म के भेद को भूलकर एक साथ उत्सव में भाग लेते हैं। इसके साथ ही, भारतीय त्योहार प्रकृति के साथ सामंजस्य और उसके संरक्षण की चेतना को भी उजागर करते हैं। मकर संक्रांति, बसंत पंचमी, पोंगल और ओणम जैसे कृषि-प्रधान पर्व ऋतुओं, फसलों और प्राकृतिक चक्रों से जुड़े होते हैं, जो मानव और प्रकृति के बीच के संबंध को सम्मान देते हैं।

दीपावली में घर की सफाई और दीप जलाने की परंपरा स्वच्छता और प्रकाश का प्रतीक है, तो गणेश चतुर्थी और दुर्गा पूजा जैसे पर्वों में मिट्टी से बनी प्रतिमाएँ, स्थानीय सामग्री का प्रयोग और विसर्जन की प्रक्रिया पर्यावरणीय चेतना को दर्शाती है। वहीं वृक्षों की पूजा - जैसे वट सावित्री, आंवला नवमी या तुलसी विवाह - यह संकेत देती हैं कि भारतीय संस्कृति ने पर्यावरण को धर्म से जोड़कर उसके संरक्षण को सामाजिक कर्तव्य बनाया है। भारतीय त्योहारों में निहित लोकगीत, नृत्य, खेल, भोजन और परंपराएँ भी सांस्कृतिक विविधता को सहेजने और आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाने का कार्य करती हैं। इस प्रकार भारतीय पर्व और त्योहार केवल धार्मिक कर्मकांड नहीं हैं, बल्कि वे एक समृद्ध सामाजिक संस्था हैं जो व्यक्ति और समाज को न केवल आध्यात्मिक उन्नयन की दिशा में ले जाती है, बल्कि प्रकृति से प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता और साझेपन की भावना को भी सशक्त रूप में विकसित करती है।

अध्यात्म : आत्मा की खोज और नैतिकता की जड़ें

भारतीय संस्कृति का अध्यात्म धर्म का ही परिष्कृत रूप है। अध्यात्म वह माध्यम है जिससे मनुष्य अपने भीतर की चेतना से साक्षात्कार करता है। इसका मूल आधार आत्मा और परमात्मा के बीच के संबंध को समझना है। उपनिषदों में कहा गया है - "तत्त्वमसि" अर्थात् "तू वही है।" यह वाक्य मनुष्य और ब्रह्म के एकत्व की अवधारणा प्रस्तुत करता है। जब व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह परम चेतना का अंश है, तब उसके भीतर नैतिकता का भाव जागृत होता है।

अध्यात्म के मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति स्वयं में आत्मनिरीक्षण करता है और अहंकार, लोभ, मोह, क्रोध, द्वेष जैसे अवगुणों से मुक्त होकर करूणा, प्रेम, त्याग, सेवा और समर्पण की ओर अग्रसर होता है। योगदर्शन, सांख्य दर्शन, वेदांत और भक्ति परंपराएं सभी आत्मविकास के साथ-साथ समाज के प्रति नैतिक उत्तरदायित्व को भी महत्व देती हैं। संतों जैसे कबीर, रविदास, तुलसीदास और ज्ञानेश्वर ने अपने भक्ति-साहित्य में न केवल ईश्वर भक्ति को महत्व दिया, बल्कि सदाचार, सहनशीलता, समानता, और मानव सेवा जैसे नैतिक मूल्यों को भी अपने संदेश का आधार बनाया।

धर्म और अध्यात्म के नैतिक आयाम

धर्म और अध्यात्म के नैतिक आयाम मानव जीवन के मूलभूत आचरणों, मूल्यों और आदर्शों को दिशा प्रदान करते हैं, जो समाज में संयम, सहिष्णुता, करुणा और सदाचार की भावना को स्थापित करते हैं। धर्म केवल पूजा-पद्धति या कर्मकांडों का नाम नहीं है, बल्कि यह जीवन के प्रत्येक पक्ष को अनुशासित और संतुलित करने की प्रेरणा देता है।

विभिन्न धार्मिक शिक्षाएँ सत्य, अहिंसा, दया, सेवा, ईमानदारी और आत्मसंयम जैसे नैतिक सिद्धांतों पर आधारित होती हैं, जो व्यक्ति को केवल एक अच्छा नागरिक ही नहीं, बल्कि एक उच्च सोच वाला, संवेदनशील और उत्तरदायी मानव बनाते हैं। अध्यात्म इन नैतिक मूल्यों को और भी गहराई देता है, क्योंकि यह व्यक्ति को आत्मा की शुद्धता, आत्म-जागरूकता और अंतर्मुखी चिंतन के माध्यम से भीतर से परिष्कृत करने की प्रक्रिया है।

जब कोई व्यक्ति अध्यात्म के पथ पर चलता है, तो वह अपने भीतर के अहंकार, क्रोध, लोभ और द्वेष से मुक्त होकर दूसरों के प्रति सहानुभूति, सहयोग और समर्पण की भावना से प्रेरित होता है। धर्म और अध्यात्म का यही नैतिक पक्ष समाज में नैतिक अनुशासन, पारिवारिक सौहार्द और सामाजिक न्याय को सुदृढ़ करता है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में धर्म और अध्यात्म को जीवन के आंतरिक शुद्धिकरण और सामाजिक कल्याण के साधन के रूप में देखा गया है, न कि केवल व्यक्तिगत मुक्ति के मार्ग के रूप में। अत: धर्म और अध्यात्म के नैतिक आयाम न केवल व्यक्ति के अंत:करण को उज्ज्वल बनाते हैं, बल्कि पूरे समाज में सद्भाव, सहअस्तित्व और नैतिक चेतना का संचार करते हैं।

भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र- विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास

सशक्त और गूढ़ प्रतीक है, जो यह दर्शाता है कि भारत की सांस्कृतिक चेतना सदा से सीमाओं, नस्लों, धर्मों और भाषाओं से परे मानव मात्र को एकात्मता की दृष्टि से देखती रही है। यह भावना केवल सैद्धांतिक आदर्श नहीं, बल्कि भारतीय जीवनदृष्टि का व्यावहारिक रूप है, जो वेदों, उपनिषदों, गीता और संत साहित्य से लेकर लोक परंपराओं तक गहराई से व्याप्त है। भारत ने कभी भी अपने सांस्कृतिक विस्तार को राजनीतिक या साम्राज्यवादी दृष्टिकोण से नहीं देखा, बल्कि ज्ञान, अहिंसा, प्रेम, धर्म और आध्यात्मिकता के माध्यम से विश्व को आलोकित करने का कार्य किया।

भगवान बुद्ध, महावीर, संत कबीर, नानक, स्वामी विवेकानंद, और महात्मा गांधी जैसे विचारकों ने अपने कर्म और वाणी से मानवता, शांति, सहिष्णुता और करुणा की जो शिक्षा दी, वह आज भी वैश्विक एकता और सह-अस्तित्व के लिए अत्यंत प्रासंगिक है। भारतीय संस्कृति यह मानती है कि सभी प्राणी आत्मिक रूप से एक ही ब्रह्म तत्व के अंश हैं, इसलिए किसी में भेदभाव या द्वेष का स्थान नहीं होना चाहिए।

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग् भवेत॥

कहने का तात्पर्य सब सुखी हो तथा सभी स्वस्थ रहे। इस प्रकार का सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। भारतीय परम्परा में मनुष्य, जीव मात्र की सहायता करना, रक्षा करना एवं कल्याण करने को विशेष महत्व दिया गया है।

यह विचारधारा केवल धार्मिक सहिष्णुता तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक समरसता, पर्यावरण के प्रति करुणा, और वैश्विक भाईचारे तक फैली हुई है। आज जब विश्व विविध संकटों -जैसे युद्ध, विषमता, असहिष्णुता और पर्यावरणीय आपदा आदि से जूझ रहा है, तब भारतीय संस्कृति का यह मूल मंत्र सम्पूर्ण मानव जाति को एक नई दिशा और नैतिक आधार दे

सकता है। इस प्रकार, विश्वबंधुत्व की भावना न केवल भारत की सांस्कृतिक पहचान है, बल्कि यह सम्पूर्ण विश्व के लिए एक आदर्श जीवनमूल्य और स्थायी शांति का पथप्रदर्शक बन सकती है।

निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति की विशेषता ही यही है कि यह धर्म, अध्यात्म और प्रकृति – तीनों को जीवन के नैतिक निर्माण का साधन मानती है। धर्म व्यक्ति को सामाजिक और नैतिक कर्तव्यों का बोध कराता है, अध्यात्म उसे आत्मबोध और विश्वबोध की ओर ले जाता है, और पौराणिक वनस्पतियाँ उसे प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की शिक्षा देती हैं। इन तीनों के समन्वय से विकसित नैतिक मूल्य व्यक्ति और समाज – दोनों को संतुलन, शांति और समरसता की ओर ले जाते हैं। आज जब आधुनिक जीवनशैली में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, तो भारतीय संस्कृति का यह गहन दर्शन एक मार्गदर्शक की भूमिका निभा सकता है। यही इसकी कालजयीता और सार्वभौमिकता का प्रमाण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

लूणिया बी.एन. (2010): प्राचीन भारतीय संस्कृति, अग्रवाल प्रकाशन।

रूहेला एस.पी. (2010): शिक्षा के दार्शनिक तथा समाजशास्त्रीय आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन

शर्मा डॉ. महेश, (2019): भारतीय ज्ञान परंपरा विशेषांक, मंथन, एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान भारतीय संस्कृति में समन्वय के तत्व, मीरा शर्मा जर्नल ऑफ मध्यप्रदेश इतिहास परिषद, भोपाल, 2006, पृष्ठ 52

द प्लैग ऑफ इंडिया, वासुदेव शरण अग्रवाल चक्रध्वज, पृष्ठ 30।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता, गिरीश कुमार सिंह ओमेगा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2009, पृष्ठ 237।

इतिहास और संस्कृति, वीरेन्द्र मोहन, शिल्पायन, 2004, पृ. 17।

कथा संस्कृति, कमलेश्वर, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006, पृष्ठ 15।

इतिहास और संस्कृति, पूर्वोक्त, पृ. 14।

हिंदी नवजागरण और संस्कृति, शंभुनाथ, आनंद प्रकाशन, 2004, पृष्ठ 271।

प्राचीन भारतीय संस्कृति, बी.एन. लुनिया लक्ष्मी नारायण पुस्तक प्रकाशन, आगरा, दशम संस्करण, 2003, पृष्ठ 16।

परजुराम शुक्ल, परिचयात्मक समाजशास्त्र, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर (राज.), 2007, पृश्ठ – 252

परजुराम शुक्ल, भारतीय समाज और जाति व्यवस्था, आविष्कार पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर (राज.), 2012, पृष्ठ – 12,13

शंकर दयाल शर्मा, मंजूशा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृष्ठ – 39

ऊर्मि शर्मा, नारी: बहुरूपा, अनंग प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ – 13

शंकर दयाल शर्मा, मंजूशा, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2002, पृष्ठ – 40

दामोदर सिंहल, भारतीय संस्कृति और विश्व संपर्क, पृष्ठ सं. 138-139, प्रकाशक-मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1980

रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अय्याम, पृष्ठ सं. xviii, प्रकाशक लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006